लेख 2

बाल साहित्य-उदासीनता की बदलती रंगतें

*शारदा कुमारी**

*नन्हे पाठकों को रोचक बालसाहित्य मिलेगा तो वे स्थायी पाठक बनेंगे। बच्चों में पढ़ने के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिए आज हर स्तर पर प्रयास हो रहे हैं। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम, विभिन्न परियोजनाओं का क्रियान्वयन तथा रोचक बाल साहित्य उपलब्ध कराने संबंधी कार्यों की शुरूआत की गई है। इसी का सुखद परिणाम है कि आप शिक्षक हो या अभिभावक सभी में इस बात के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो गई है कि बच्चों के लिए किस प्रकार का बाल साहित्य चुना जाए। इसी बात को उजागर कर रहा है लेख- **बाल साहित्य-उदासीनता की बदलती रंगतें।***

प्राथमिक स्तर की शिक्षा में दिलचस्पी रखने वालों और बच्चों से सरोकार रखने वालों के लिए यह बात ज़रूर सुकून देने वाली है कि हमारे देश में बाल साहित्य को लेकर गोष्ठियाँ आयोजित की जा रही हैं, पत्रिकाओं के विशेषांक निकाले जा रहे हैं और अध्यापकों की तैयारी से जुड़े कार्यक्रमों में भी बाल साहित्य पर बातचीत होने लगी है।

हमारे देश के संदर्भ में यह बात इसलिए दीगर है कि बच्चों की ज़रूरतों को कभी 'ज़रूरत' समझा ही नहीं गया, 'अरे! बच्चे ही तो हैं, उनके लिए इतना क्या सोचना' कहकर बच्चों से जुड़ी बड़ी से बड़ी अति संवेदनशील बात को भी बड़े हलके से लिया जाता है। सार्वजनिक परिवहन सुविधा हो या स्वयं का वाहन, बच्ची यदि पूरी सीट पर बैठी है तो उसे बड़े आराम से उठा दिया जाता है, यह कहते हुए कि 'अरे बच्ची तो कहीं भी टिक बैठ जाएगी।' बच्चों के लिए खिलौने आदि लाने की बात हो तो पहले उसके टिकाऊपन पर ध्यान दिया जाएगा और हाँ इस बात पर भी कि अड़ोसी-पड़ोसी सगे संबंधियों को जताया जा सके कि 'देखो हम अपने बच्चे के लिए कितना महँगा खिलौना लाते हैं।' उनके लिए स्कूल चुनना हो तो 'स्कूल का सुविख्यात' होना बहुत मायने रखता है और इन 'सुविख्यात स्कूलों' में जुटाया गया ताम-झाम बच्चों की ज़रूरतों का कितना ध्यान रखता है यह अपने-आप में बहुत

* *वरिष्ठ प्रवक्ता*, मंडलीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर.के.पुरम्, नयी दिल्ली

बड़ा सवाल है। ठीक यही सब बातें लागू होती हैं बच्चों के लिए पुस्तकें चुनने के संदर्भ में। बच्चे कैसी पुस्तकें पढ़ना चाहेंगे, यह बात तो सोचने की ज़रूरत ही नहीं समझी जाती। यहाँ पर भी हम बड़ों के 'मानक' आड़े आ जाते हैं।

मिसाल के तौर पर आपको एक वाकया सुनाती हूँ। दिल्ली के अभिजात्य वर्ग को ललचाने की तमाम चीजें जुटाने वाले एक 'सुविख्यात' विद्यालय की पुस्तकालयाध्यक्ष अपनी दो सहयोगियों के साथ मेरे पास आईं। उनका मेरे पास आने का प्रयोजन था कि मैं उन्हें कुछ बालोपयोगी पुस्तकों के नाम सुझा सकूँ। मुझे इस बात की वास्तव में बहुत खुशी हुई और मैंने अपने बाकी सभी काम छोड़कर उन्हें कई पुस्तकों के नाम सुझाए। वे पुस्तकें कहाँ से हासिल हो सकती हैं ये सब पते इत्यादि भी बड़े जतनपूर्वक बता दिए।

एक सप्ताह बाद घोर निराशा के साथ वह टीम लौटी। आते ही उन्होंने उलाहना दिया कि पुस्तकों के नाम सुझाते समय मुझे स्कूल के 'स्तर' और 'नाम' का तो ध्यान रखना चाहिए था। उन्हीं के शब्दों में, "मैडम, ये क्या? आपने तो एकदम लोअर मिडिल क्लास किताबें सुझा दीं।"

सकपकाहट के साथ-साथ मुझे अपनी अज्ञानता पर बड़ी बेबसी-सी महसूस हुई कि बाल साहित्य भी लोअर-मिडिल-अपर क्लासों में बँट चुका है और मुझे पता तक नहीं।

बातचीत की मितव्ययिता के बाँध तोड़ते हुए उनका तुमुल कोलाहल मुझे यह बता पाया कि उनके अभिभावकों को ये सस्ती किताबें लुभा नहीं पाएँगी, ''यू नो अवर पेरेंट्स ... दे बिलांग टू ..... आई थिंक यू कैन अंडरस्टैंड ...। आप हमें कुछ महँगे नामी प्रकाशकों की लुभावनी चिकनी चमकदार किताबों के नाम सुझाएँ। हमारे पेरेंट्स को भी लगे कि हम बच्चों का कितना ख्याल रखते हैं।'' उनकी इस बात पर मुझे पिछले वर्ष की घटना याद हो आई जब मैंने अपने संस्थान की सफाईकर्मी को उसकी छह वर्षीया बेटी के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा 'बरखा' शृंखला उपहारस्वरूप दी। बच्ची तो पुस्तकों को पाकर फूली नहीं समा रही थी। बच्ची का अतिरेक उत्साह पुस्तकों के शीर्षक व कथानक जानने को आतुर था जबकि माँ की जिज्ञासा पुस्तकों के दाम जानने भर तक सीमित थी। पूरी पुस्तक उलट-पुलट कर अंतिम पृष्ठ पर पुस्तक के दाम देखकर माँ के चेहरे की कड़वाहट तीक्ष्णता के साथ अभिव्यक्त हुई, "मैडम, मेरी बच्ची के लिए दस रुपल्ली वाली किताब।"

इधर माँ मुझे दाम को लेकर उलाहना दे रही थी तो उधर उसकी बच्ची पुस्तकों की जादुई दुनिया में खो चुकी थी। उन पुस्तकों से वह अपने मन के तारों को झनझनाने वाली ध्वनियाँ सुन रही थी, अपने चारों ओर के संसार की रंगतें देख रही थी। उसकी कौतूहल भरी दृष्टि उसकी बौद्धिक, सक्रियता और स्वतः स्फूर्त खुशी का परिचय दे रही थी। इस तरह की मिसालें मेरे और आप सभी के पास होंगी और मन खिन्नता से भर उठता होगा पर खुशी अब इस बात की है कि बाल साहित्य पर चर्चाएँ चल पड़ी हैं। लोगों में बच्चों के लिए

पुस्तकें खरीदते समय सजगता व चौकन्नापन बढ़ा है जो कई मायनों में पहले से फ़र्क है। जैसे कि एक ज़माने में अभिभावकों की एक आम प्रवृत्ति थी कि बच्चों के लिए पाठ्यपुस्तक से इतर पुस्तकें और पत्रिकाएँ खरीदते समय इस बात का खास ध्यान रखा जाता था कि पुस्तकों में किसी-न-किसी तरह का संदेश हो। पुस्तक नैतिक मूल्यों और उपदेशों से लकदक अटी पड़ी हो। ऐसी पुस्तक अभिभावकों की पहली पसंद होती थीं और अमर चित्र कथाओं ने अभिभावकों की इस पसंद का पूरा-पूरा लाभ उठाया। अभिभावक और अध्यापक उन पुस्तकों से परहेज़ करते थे जिनमें बच्चों की आवारगी, मौजूँपन अटपटी अठखेलियों का ज़िक्र हो। संस्कृतनिष्ठ भाषा हिंदी के संदर्भ में उन्हें बहुत सुहाती थी और ऐसी पुस्तक जिसमें शब्दों का ठेठ खौटीपन नज़र आए उन्हें तो वे दूर से ही नमस्कार कर देते थे, ये तो भला हो गुलजार के गीत 'जंगल-जंगल बात चली है पता चला है चढ्ढी पहन के फूल खिला है फूल खिला है' का जिसने चढ्ढी, आवारा, झुमकेदार जैसे शब्दों को एक सामाजिक वर्ग विशेष में स्वीकृत बनाया।

बदलाव की यह बयार बच्चों के लिए बहुत भली है। लोग उस पैमाने की तलाश करने लगे हैं जो उन्हें बता सके कि कौन-सी पुस्तक बच्चों के लिए 'खुल जा सिमसिम' बनकर उन्हें पढ़ने को उकसाएगी और उनकी चेतना में बिंबात्मक, काव्यमय चिंतन का सुदृढ़ आधार बनाएगी।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली के 'रीडिंग सेल' ने बच्चों के लिए पुस्तकों का चयन करने के संदर्भ में एक पैमाना बनाने की कोशिश की है। उस पैमाने के अनुसार पाठकों की उम्रगत रुचियों और विशिष्टताओं का बराबर ध्यान रखते हुए पुस्तक को भाषा, चित्रांकन, विषयवस्तु के प्रवाह, सरलता और रंजकता के आधार पर परखा जाए। ऐसी पुस्तकें ली जाएँ जो बच्चों को उत्साही पाठक बनाएँ, जिनके चित्रों पर संवाद करने की पर्याप्त संभावनाएँ हों। 'संवाद करना' सीखना और सीखे हुए अनुभवों को मजबूत करने का कारगर तरीका है। चित्र संवाद और अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम स्रोत हैं। भाषायी गतिविधि के रूप में भी बच्चे चित्रों के आधार पर अपनी कल्पना से उसमें बहुत कुछ जोड़ते हैं, पूर्व अनुभवों से संबंध स्थापित करते हैं। चित्रों की जब बात चल रही है तो लगे हाथ शब्द रहित या कम शब्दों वाली चित्रात्मक पुस्तकों पर भी बात कर लेनी ज़रूरी है। खुशनुमा रंगों के साथ एक ही चित्र में बहुत-सी घटनाओं व अवधारणाओं का दिखना कभी 'समृद्ध चित्र' की श्रेणी में आता था पर अनुभव बताते हैं कि एक ही चित्र में कई पात्रों/चरित्रों घटनाओं का होना बच्चों में खिन्नता का भाव पैदा करता है, कई बार उन्हें पशोपेश में भी डाल देता है। अच्छा तो यह है कि चित्रों में पुनरावृत्ति हो और कुछ इस तरह की गुँजाइश हो कि बच्चे अनुमान लगाने का आनंद उठा सकें। कथानकों के संदर्भ में जानी-पहचानी घटनाओं के साथ-साथ ऐसी छवियाँ हों जो बच्चों को

विस्मित कर सकें। पूर्व घटनाओं की पुनरावृत्ति और अनुमान लगाने की गुँजाइश बच्चों की पुस्तक पढ़ने के प्रति ललक बनाए रखती है।

कुछ अध्यापक लोक कथाओं को यह कहकर तिरस्कृत कर देते हैं कि इन कथाओं को पढ़कर बच्चे वैज्ञानिक चिंतन से कोसों दूर भागेंगे पर उन्हें समझना होगा कि यह उनका भ्रम है।

तिलिस्मी दुनिया उन्हें मज़े के साथ खोज-बीन के अवसर देगी और जिज्ञासु प्रवृत्ति को भी संबल प्रदान करेगी। मुझे याद आती है अपने बचपन में पढ़ी वह पुस्तक जिसके मुख्य पात्र द्वारा छोड़े गए तीर से जमीन के भीतर अचानक चाँदी की एक पगडंडी बन जाती है और वह पगडंडी कई तरह के घुमाव लेती हुई एक सुनहरे बाग में जा पहुँचती है। याद आता है कि बचपन में कितने सवालों को जन्म दिया था इस पुस्तक ने।

लोक कथाओं के संदर्भ में अभिभावक और अध्यापकों का एक और भ्रम है कि लोककथाएँ बहुत से पुरातनपंथी संकीर्ण विचारों व छवियों को पुख्ता करती हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि लोक कथाओं में कुछ रूढ़िबद्ध चरित्र चत्रिण होंगे, हो सकता है कि कुछ ऐसे शब्द भी हों जो आज के समय में संवैधानिक तौर पर तो अमान्य हैं और इंसानियत के नाते भी जिन्हें अमान्य माना जाना ठीक होगा। लेकिन, यह भी जान लेना ज़रूरी है कि बच्चे इस तरह के चित्रण पर सवाल उठाते हैं और हमें भी मौका देते हैं कि हम उनके साथ कुछ सवाल-जवाब करें। पंचतंत्र व गिजुभाई बधेका की एक से एक खूबसूरत कहानी में कुछ इस तरह के शब्द मिल जाते हैं पर इस आधार पर उन पुस्तकों को छोड़ा नहीं जा सकता। इन पुस्तकों को पढ़ते हुए बच्चों के मन में जो प्रश्न उठते हैं, वे उस ज्ञान शिखर की ओर विचारों की तेज उड़ान की शुरूआत हैं, जहाँ से कुछ बरस बाद बच्चे जीवन के रहस्यों की जटिलता देख पाएँगे।

बाल साहित्य विधाओं की दृष्टि से भी भरा-पूरा हो। जानकारीपरक पुस्तकें, गतिविधि आधारित पुस्तकें, कविता, पहेलियाँ, पत्र डायरियाँ सभी कुछ हो सकता है, बशर्ते ज्ञान देने व उपदेश देने की नीयत न हो।

कथ्य, भाषा, उम्रगत विशेषताओं के अनुरूप हो। हालाँकि यदि इन मानदंडों को ध्यान में रखें तो निराशा ही हाथ लगेगी क्योंकि बाल साहित्य को लेकर बड़े गमगीन हालात हैं। बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य ऐसे-ऐसे चरित्र चित्रणों से अटा पड़ा है जिनके जीवन मूल्य अपनाने की कल्पना बुजुर्गों तक ने न की हो। अपने दफ्तर की मेज़ पर धूल की किरच देखकर भड़कने वाले व्यक्ति अपने बच्चों के लिए काम-क्रोध आदि से बचने का संदेश देने वाली कहानियों की पुस्तकें खरीदते हैं। अपने बुजुर्ग माता-पिता को वृद्धाश्रम की राह दिखाने वाले दंपत्ति अपने बच्चों को श्रवण कुमार की जीवनी भेंट करते हैं। श्रमजीवियों को तिरस्कृत दृष्टि से देखने वाले रचनाकार बच्चों के लिए कविता/कहानी लिखते समय पूरी रचना के ताने-बाने को श्रम के महत्त्व से जुड़े संदेशों में उलझा डालेंगे। अपने चारों ओर की

सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक उथल-पुथल से बेखबर दुनिया बच्चों को 'जागरूक प्राणी' बनने की ओर प्रेरित करेगी तमाम तरह की पुस्तकों से। कहने का मतलब यह है कि बच्चों को अगर पढ़ने के लिए कुछ भी देना है तो यह नीतिपरक उपदेशों व संदेशों से लकदक होना चाहिए। बाल साहित्य के प्रति इस तरह की धारणा रखने वाले समाज की समझ में बदलाव की हवा बहने लगी है जिसकी ताजा मिसाल है नयी दिल्ली के तुगलक क्रिसेंट के विद्यालय में शिशु गीतों पर आयोजित हुई एक बैठक। इस बैठक में प्राथमिक एवं पूर्व प्राथमिक विद्यालयी स्तर पर कार्यरत अध्यापिकाएँ शिशु गीतों व कहानियों के स्वरूप, उद्देश्य आदि पर विचार कर रही थीं। 76 प्रतिशत प्रतिभागियों का मत था कि शिशु गीत व कहानियाँ ऐसी हों जो कि बालकों को 'मज़ा' दें जबकि दो वर्ष पहले इसी विद्यालय में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया था कि बच्चों को ऐसे गीत, कविता, कहानी आदि सुनाए व पढ़ाए जाएँ जो किसी-न-किसी प्रकार का मूल्यपरक संदेश दें। मुझे याद आती है कुछ कविताओं के प्रति उन अध्यापिकाओं की प्रतिक्रिया जो यहाँ साझा करना चाहूँगी। अधिक तो नहीं दो एक कविताएँ आपके सामने रखती हूँ-

"टाई पहनी है चूहे ने
पहनी है पतलून
चुहिया दादी को करता है
बैठा टेलीफून
एक हाथ से चुहिया दादी
मटर रहीं थी भून
और फोन पर बोल रही थी
हैलो अफलातून''

दूसरी कविता कुछ इस तरह से थी -

"तितली को अपने पँखों पर
रहता है अभिमान
मधु पराग से मिल सकता है
उसे नहीं यह ज्ञान
जब तक वह पंखों पर भूली
उड़ती चारों ओर
मधुमक्खी फूलों पर आकर
लेटी शहद बटोर।"

तीसरी कविता पर भी नज़र डालें -

"एक शहर है टिम्बकटू
लोग वहाँ के हैं बुद्धू
बिना बात के ही ही ही
बिना बात के हू हू हू"

संजीदगी के साथ बयाँ करूँगी कि इन तीनों कविताओं में से 'तितली को अपने' वाली कविता को बहुत सराहा गया व बाकी दो कविताओं को यह कहकर कि 'उनमें है क्या' तिरस्कृत किया गया। एकदम ऊलजलूल सी कविताएँ हैं न कोई अर्थ न कोई 'मॉरल वैल्यू' पर इस वर्ष तो विचारों में आए बदलाव की बात देखते ही बनती थी। एकबारगी तो लगा कि यह बदलाव कहीं छलावा या दिखावा मात्र तो नहीं, पर उस कक्षा में आनंद आया जहाँ बच्चे मज़ा ले लेकर गा रहे थे -

"चना बनावे घासी राम
जिनकी झोली में दूकान
चना खावे घसीरन मुन्ना

बोले और नहीं कुछ सुनना।"

उस कक्षा के पिछले दरवाजे की आड़ में एक चार्ट पेपर पर लिखी कविता मुँह बिसूर रही थी।

"तीन चार तीन चार
सदा जीत का करो विचार
पाँच छह पाँच छह
हम वीर सिपाही हैं।
सात आठ सात आठ
बहादुरी का पढ़ लो पाठ।"

कहने का मतलब यही है कि बाल साहित्य में पसरी उदास रौनकों में खुशनुमा रंगतें अँगड़ाइयाँ ले रही हैं।

❑❑❑